नियमसार। है न? नियमसार, ११० गाथा। उसकी टीका, दो श्लोक। टीका हो गयी है।

एको भावः स जयति सदा पञ्चमः शुद्धशुद्धः,
कर्मारातिस्फुटितसहजावस्थया सन्स्थितो यः।

मूलं मुक्तेर्निखिल-यमिना-मात्मनिष्ठा-पराणां,
एकाकारः स्वरस-विसरापूर्ण-पुण्यः पुराणः ।।१६०।।

यह पंचम भाव, द्रव्यभाव, शुद्ध शुद्धभाव, द्रव्य से भी शुद्ध और पर्याय से भी शुद्ध है और त्रिकाल शुद्ध है। ऐसा **जो कर्म की दूरी के कारण...** पंचम भाव जो सम्यग्दर्शन का विषय, जो ध्रुवभाव नित्यानन्द प्रभु, वह **कर्म की दूरी के कारण...** कर्म से तो दूर वस्तु है। कर्म का उस द्रव्य-वस्तु को सम्बन्ध नहीं है। पर्याय में राग का, एक समय की पर्याय में राग का सम्बन्ध है। द्रव्य को सम्बन्ध नहीं है। द्रव्य तो **कर्म की दूरी के कारण...** आहाहा! वस्तु जो है, प्रभु! (वह) कर्मपने की दूरी के कारण **प्रगट सहजावस्थापूर्वक विद्यमान है,...** प्रगट सहज अवस्था अर्थात् सहजस्वरूप। अव अर्थात् निश्चय, स्थ—अवस्था (अर्थात्) पर्याय, ऐसा नहीं। भाषा सहजावस्था है परन्तु सहज अवस्थ (अर्थात्) सहजरूप से रहा हुआ, निश्चय से रहा हुआ है। जिसे कर्म की गन्ध नहीं, कर्म का सम्बन्ध नहीं, ऐसा सहज अवस्थ, स्वभाविक निश्चयस्थ रहा हुआ, अपने स्वरूप की शुद्धता के स्वभाव में सहज पंचमभाव रहा हुआ है।

जो आत्मनिष्ठापरायण (आत्मस्थित)... मुनियों को, ऐसे आत्मा में निष्ठ, ऐसे आत्मा में स्थित... आहाहा! **समस्त मुनियों को मुक्ति का मूल है,...** वह पंचम भाव, वह मुक्ति का मूल है। मोक्ष का मार्ग, वह भी नहीं कहा क्योंकि मार्ग का तो व्यय होता है, तब मुक्तदशा का उत्पाद होता है। उसका भाव उत्पन्न हुआ, उस भाव में से भाव (हुआ), उस पंचम भाव में से मुक्त अवस्था आती है। पंचम भाव के आश्रय से मुक्ति का मूल है। आहाहा! किसे? **आत्मनिष्ठापरायण...** आत्मा में प्रेम में ही जो तत्पर अन्दर हैं। स्वभाव जो शुद्ध त्रिकाल है, सनातन सत्य (है), वह कर्म की दूरी के कारण प्रगट अवस्था स्वरूप ही वस्तु है। सत् सत्ता है, सत्ता है, अस्तिरूप वस्तु है, वह त्रिकाल है। उसमें जो परायण है। उसमें ही निष्ठा अर्थात् परायण है। आहाहा!

समस्त मुनियों को... समस्त मुनियों को वह मुक्ति का मूल है। व्यवहारमोक्षमार्ग निकाल दिया; निश्चयमोक्षमार्ग निकाल दिया। पर्याय है। पर्याय में से पर्याय नहीं आती। इसलिए त्रिकाल जो सत् सत्ता पूर्ण, दूर से भिन्न, कर्म दूर से भिन्न... आहाहा! ऐसा जो सत् वह **मुनियों को मुक्ति का मूल है,...** मुनियों को मुक्ति का मूल तो वह है। आहाहा! व्यवहार

निकाल दिया तो निश्चय भी निकाल दिया यहाँ तो। और अभी तो यह चलता है कि व्यवहार करने से निश्चय होगा। आहाहा! शुभराग हो, शुभराग की क्रिया हो तो शुद्धता होती है, ऐसा आजकल तो चलता है। आहाहा!

यहाँ तो **समस्त मुनियों को...** आहाहा! किसी भी काल के और किसी भी भाववाले मुनि यह हैं। पंचम काल के मुनि और चौथे काल के मुनि को अन्तर है, ऐसा कुछ नहीं है। आहाहा! **समस्त मुनियों को...** इस कर्म से दूर सहजावस्थास्वरूप। अवस्थ अर्थात् निश्चय। अवस्था नहीं। अव अर्थात् निश्चयरूप रहा हुआ, स्थ-टिका हुआ। वह **समस्त मुनियों को मुक्ति का मूल है,...** आहाहा! **जो एकाकार है...** जो एक ही स्वरूप है। द्रव्य और पर्याय, ऐसे दो भेद उसमें नहीं है। द्रव्य है, वह एक स्वरूप ही है। पंचम भाव ऐसा पारिणामिकस्वभाव, ऐसा ज्ञायकभाव एकरूप है।

एकाकार है (अर्थात् सदा एकरूप है), जो निज रस के विस्तार से भरपूर होने के कारण... आहाहा! अपने निज आनन्द और ज्ञानरस के विस्तार से अन्दर भरपूर होने के कारण। त्रिकाली, हों! आहाहा! त्रिकाली चीज़ निजरस के फैलाव से, अपना निजरस है, वही अन्दर पंचम भाव में विस्तार प्राप्त है। जो आनन्दरस है, परम पंचम रस है, ज्ञायक रस है, उसमें उस **रस के विस्तार से भरपूर होने के कारण...** पंचम भाव निज रस के विस्तार के फैलाव से, विस्तार के फैलाव से भरपूर है। आहाहा!

वह **भरपूर होने के कारण पवित्र है...** आहाहा! सब निकाल दिया। पर्याय और राग, निमित्त और संयोग और कर्म से भी दूर वर्तता है। दूर है। अन्दर कर्म से भगवान दूर है। आहाहा! अब यहाँ (अज्ञानी) कहते हैं कि कर्म बाधक है। कर्म का उदय विघ्नकर्ता है। यहाँ कहते हैं कि कर्म के उदय से तो वस्तु दूर है। उसे और इसे कुछ स्पर्श नहीं है। आहाहा! निजसत्ता ऐसा जो स्वरूप, सहज अवस्थ, सहज अवस्थ। निश्चय सहज दशा में शक्तिरूप रहा हुआ, स्वभावरूप भरपूर। आहाहा! **निज रस के विस्तार से भरपूर...** निश्चय त्रिकाली, हों! उसके कारण पवित्र त्रिकाल है। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन का विषय है। सम्यग्दर्शन, वह भी दर्शन का विषय नहीं है। सम्यग्दर्शन भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है।

सम्यग्दर्शन का विषय त्रिकाली, कर्म से दूर, अपने स्वभाव से भरपूर विस्तरित, रहा

हुआ वह आत्मा पवित्र है। त्रिकाल पवित्र है। त्रिकाल शुद्ध आनन्द... आहाहा! ऐसा जो चैतन्य का सत्त्व है, सत्ता त्रिकाल **और जो पुराण (सनातन) है,...** अनादि है। सनातन है। पुराण है... पुराण है... सनातन है, अनादि है। उसकी कोई आदि है या उत्पन्न हुआ है, ऐसा नहीं है। सदा पुराण है, सदा सनातन है। आहाहा! मुनि को शब्द कम पड़ते हैं। उसे किस प्रकार कहना? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

ऐसा जो भगवान अन्दर आत्मा एक समय में कर्म से दूर, स्वभाव से भरपूर। कर्म से दूर, स्वभाव से भरपूर, अपने स्वभाव से विस्ताररूप से पवित्र, आहाहा! और जो सनातन—अनादि है। आहाहा! ऐसी दृष्टि करना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। बाकी सब बातें हैं। आहाहा! ऐसी चीज़ है, वह पवित्र है, सनातन है, अपने स्वभाव से विस्तार फैली हुई है। आहाहा! कर्म से दूर है। ऐसा सनातन है।

वह शुद्ध-शुद्ध... दो बार कहा है। वह वस्तु शुद्ध है, शुद्ध है। वह द्रव्य से शुद्ध है, वस्तु से शुद्ध है, गुण से शुद्ध है। शुद्ध ही है। अशुद्धता की बात-गन्ध उसमें नहीं है। आहाहा! ऐसा एकान्त लगता है। उसमें यह बाहर की धमाधम, प्रवृत्ति में रचा-पचा, उसे यह निवृत्तिरूप तत्त्व ऐसा बैठना उसको कठिन पड़ जाता है। प्रवृत्ति में पड़े हुए, निवृत्तस्वरूप तत्त्व पूरा, अत्यन्त निवृत्त है, त्रिकाल निवृत्त है। आहाहा! शुद्ध है... शुद्ध है। यह बहुत बार श्लोक में आ गया है। २२२, २५६ में आ गया है। दो बार शुद्ध क्यों कहा है? अर्थात् वस्तु से शुद्ध है, कर्म से रहित शुद्ध है, स्वयं शुद्ध है। आहाहा! द्रव्य से शुद्ध है, भाव से शुद्ध है। द्रव्य से शुद्ध है, गुण से शुद्ध है, वह शुद्ध-शुद्ध है। आहाहा! ऐसा यह पंचम भाव... आहाहा!

शुद्ध-शुद्ध एक पंचम भाव... एक पंचम भाव। चार भाव निकाल दिये। उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक जिसमें नहीं। जिसमें ये चार भाव नहीं। वह तो **एक पंचम भाव सदा जयवन्त वर्तता है।** सदा जयवन्त वर्तता है, सदा जयवन्त वर्त रहा है। प्रगट जयवन्तरूप वर्त रहा है। आहाहा! परन्तु पर की प्रवृत्ति की दृष्टि की आड़ में, उतावल के कारण, धीर जो तत्त्व है, धीरजवाला, वह उतावलिया को हाथ नहीं आता-ऐसा कहते हैं। उतावल करने जाए अर्थात् ऐसा कर दूँ... ऐसा कर दूँ... ऐसा कर दूँ... बाहर में ऐसा करूँ, अमुक ऐसा करूँ। आहाहा! ऐसा भगवान पंचम भाव सदा जयवन्त है, ऐसा पर्याय में भान

हुआ है, वह कहता है। पर्याय में उस सनातन सत्य का भान हुआ है, वह ऐसा कहता है कि वह तो सदा जयवन्त है। आहाहा! समझ में आया?

सदा जयवन्त है। किसे? जिसे पर्याय में भासित हुआ है उसे। है, तथापि भासित नहीं हुआ, उसे क्या है? आहाहा! इसलिए मुनियों को मुक्ति का मूल है, ऐसा कहा न? आहाहा! उसे तो सदा शुद्ध-शुद्ध जयवन्त वर्तता है। आहाहा! क्या मांगलिक! क्या सनातन जैनदर्शन का तत्त्व! सनातन आत्मतत्त्व, सनातन शुद्ध जीवतत्त्व। आहाहा! वह जयवन्त वर्तता है। ऐसा कहकर पर्याय में हमें वह जयवन्त वर्तता है, ऐसा भासित हुआ है, ऐसा कहते हैं। है, वह है - ऐसा शास्त्र में कहा है और वह ले लिया, धारणा की है, उसमें जयवन्त वर्तता है, उसे नहीं। आहाहा! समझ में आया? जिसकी पर्याय में मुक्ति का मूल जो है, वह भासित हुआ है, इसलिए उसे जयवन्त वर्तता है। आहाहा!

ऐसा मार्ग व्यवहार रुचिवाले को तो कठिन लगता है। व्यवहार क्रियाकाण्ड यह करो, तप करो, अपवास करो, भक्ति करो, मन्दिर बनाओ। आहाहा! करोड़ का मन्दिर, पाँच करोड़ का मन्दिर भले बनावे, कहते हैं। बीस लाख की मोटर अभी वापस आयी है, कहते हैं। वहाँ मुम्बई, पूनमचन्द की। और ख्रिस्ती के गुरु को तो पाँच करोड़ की मोटर। मोटर पाँच करोड़ की, हों! इसलिए मानो बड़े (हो गये)। पाँच करोड़ की मोटर में बैठे, वह तो बड़ा ही होवे न! कहते हैं कि वह (बड़ा) नहीं है। इस मोटर में बैठे, वह बड़ा। आहाहा! ऐसा सनातन सत्य जो है, वह जयवन्त वर्तता है, ऐसा हमें पर्याय में भासित हुआ कहते हैं कि वह जयवन्त वर्तता है। आहाहा! यह हमारी मोटर अनन्त-अनन्त अरब रुपये में भी मिलती नहीं। अनन्त-अनन्त क्रियाकाण्ड से मिलती नहीं। आहाहा! इसका अनन्त पुरुषार्थ स्वसन्मुख हो, क्रमबद्ध का निर्णय करने पर उसका स्व का पुरुषार्थ हो, उसे वह जयवन्त वर्तता है। आहाहा! अकेला निश्चय लगता है, परन्तु निश्चय अर्थात् परम सत्य। पश्चात् अशुद्धनय से, व्यवहावर से चाहे जो बात करे, वह सब भेद भले हों परन्तु वे कोई आश्रय करनेयोग्य नहीं है। वह कोई चीज़ नहीं है। आहाहा!

शुद्ध-शुद्ध... दो शब्द प्रयोग किये हैं। ऐसा यह पंचम भाव। आहाहा! द्रव्य से शुद्ध है, गुण से शुद्ध है, पर्याय से शुद्ध है। यह पर्याय में भासित हुआ है, इससे पर्याय भी शुद्ध है। आहाहा! द्रव्य शुद्ध है, गुण शुद्ध है। सदा जयवन्त वर्तता है, उसमें ऐसा कहना है।

जयवन्त वर्तता है, वह पर्याय में शुद्ध में यह भान हुआ है। पर्याय भी शुद्ध हुई है, इसलिए पूरा ज्ञात हुआ है कि यह जयवन्त वर्तता है। आहाहा! अब ऐसा मार्ग। फिर लोग एकान्त कहे न? सम्यक् एकान्त है। निश्चयनय सम्यक् एकान्त है। नय है न? सम्यक् एकान्त है।

प्रभु सनातन जयवन्त वर्तता है। उसका अनुभव, वह मुक्ति का मूल है। उसका अनुभव, वह मोक्ष का मूल है। आहाहा! मुनि को शब्द कम पड़ते हैं। कितना इसे निकालना? आहाहा! ऐसा जो भगवान त्रिकाली एक समय में वर्तता जयवन्त वर्तता है— ऐसा कहते हैं, कहते हैं। वह पर्याय में भासित हुआ है, इसलिए जयवन्त वर्तता है - ऐसा कहते हैं। ऐसा कहते हैं। पर्याय में ऐसे सनातन सत्य शुद्ध का अनुभव हुआ है, इसलिए कहते हैं कि जयवन्त वर्तता है। आहाहा! अब बाहर की क्रियाकाण्डवालों को यह जँचना कठिन पड़ता है। आहाहा! कुछ करें... कुछ करें... यहाँ तो कहते हैं मुक्ति का मूल है, उसमें स्थिर हों। उसमें स्थिर हों, वह उसकी पर्याय है। आहाहा!

पद्मप्रभमलधारि मुनि ने पंचम भाव के कारणपरमात्मा का बहुत ही महिमा गायी है। आहाहा! कारणपरमात्मा सनातन पंचम भाव, है वैसा कहा है। महिमापूर्वक कथन किया है, इसका अर्थ है उससे अधिक महिमा की है, ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसा ही वह स्वरूप है। शुद्ध, शुद्ध और सनातन जयवन्त वर्तता है। पर्याय की पुकार है कि वह दृष्टि में आया है, वह पर्याय पुकारती है कि जयवन्त वर्तता है। आहाहा! यह १६० श्लोक (पूरा) हुआ। शुद्ध-शुद्ध शब्द अन्यत्र बहुत जगह आता है। समयसार में २२२, २५६ में समयसार में शुद्ध-शुद्ध दो शब्द एक साथ आते हैं। १६० श्लोक पूरा हुआ। आहाहा!

श्लोक-१६१

(मंदाक्रांता)

आसन्सारादखिल-जनता-तीव्रमोहोदयात्सा,
मत्ता नित्यं स्मरवशगता स्वात्मकार्यप्रमुग्धा।
ज्ञानज्योतिर्धवलितककुभ्मण्डलं शुद्धभावं,
मोहाभावात्स्फुटितसहजावस्थमेषा प्रयाति।।१६१।।

(वीरछन्द)

है अनादि से जन समूह को तीव्र मोह से मत्त सदा।
ज्ञान-ज्योति यह कामाधीन निजात्मकार्य में मूढ़ सदा॥
ज्ञान-ज्योति वह मोह विलय से शुद्धभाव को प्राप्त करे।
दिग्मंडल को निर्मल करती, सहज अवस्था प्रगट करे॥१६१॥

[श्लोकार्थः] अनादि संसार से समस्त जनता को (-जनसमूह को) तीव्र मोह के उदय के कारण ज्ञानज्योति सदा मत्त है, काम के वश है और निज आत्मकार्य में मूढ़ है। मोह के अभाव से यह ज्ञानज्योति शुद्धभाव को प्राप्त करती है—कि जिस शुद्धभाव ने दिशामण्डल को धवलित (-उज्ज्वल) किया है तथा सहज अवस्था प्रगट की है॥१६१॥

श्लोक -१६१ पर प्रवचन

१६१ (श्लोक)।

आसन्सारादखिल-जनता-तीव्रमोहोदयात्सा,
मत्ता नित्यं स्मरवशगता स्वात्मकार्यप्रमुग्धा।
ज्ञानज्योतिर्धवलितककुभ्मण्डलं शुद्धभावं,
मोहाभावात्स्फुटितसहजावस्थमेषा प्रयाति।।१६१।।

[श्लोकार्थः] अनादि संसार से समस्त जनता को... आहाहा! समस्त

(-जनसमूह को) तीव्र मोह के उदय के कारण... मोह अर्थात् परसन्मुख की सावधानी के झुकाव के कारण, अनादि संसारी प्राणी को परसन्मुख के झुकाव के कारण... आहाहा! **ज्ञानज्योति सदा मत्त है,...** यह ज्ञानज्योति सदा मत्त-गहल हो गयी है। आहाहा! मोह में मत्त है। **मोह के उदय के कारण...** पर्याय में मत्त है। **काम के वश है...** आहाहा! किसी भी वृत्ति की इच्छा के वश है। इसलिए वह हाथ नहीं आता। अपने सनातन सत् के सिवाय कोई भी बाह्य की चीज़ छोटी-बड़ी, दूसरे द्रव्य-गुण-पर्याय... आहाहा! भगवान हो या भगवान की वाणी हो, उस परसन्मुख के मोह के भाव के कारण... आहाहा! **सदा मत्त है,...** पागल है, दशा पागल हो गयी है। आहाहा! जैसा सनातन पवित्र है, वैसी सनातन यहाँ अनादि की पर्याय में अपवित्रता हो गयी है, कहते हैं। आहाहा!

काम के वश है... काम शब्द से इच्छा। किसी भी पदार्थ की परसन्मुख की इच्छा की उत्साह, वीर्य की वृत्ति, वीर्य का उत्साह, परसन्मुख में किसी भी प्रकार का उत्साह... आहाहा! उसके वश हो गया है। अन्तर (में) देखने का समय नहीं मिलता। काम के वश में मत्त है। आहाहा! अपनी... उसका अवलम्बन, ... है। आहाहा! .... आहाहा! पहले महिमा की न? कर्म से दूर है। परन्तु कर्म के समीप में स्वयं वर्तता है। ऐसे नहीं वर्तता, ऐसे वर्तता है।

काम के वश है और निज आत्मकार्य में मूढ़ है। ....करने का कुछ है ही नहीं। ऐसा जो आत्मा निज कार्य... ऐसा जो निज आत्मा का कार्य... परन्तु वही **मोह के अभाव से यह ज्ञानज्योति शुद्धभाव को प्राप्त करती है...** भले अशुद्धपने में मत्त हुई हो परन्तु उस मोह के अभाव के कारण... आहाहा! अपने पुरुषार्थ के मोह के अभाव के कारण... आहाहा! क्रमबद्ध में यह आया। जहाँ क्रमबद्ध का निर्णय करने जाता है, वहाँ ज्ञायकभाव का निर्णय होता है। वहाँ मोह का अभाव होता है। आहाहा! क्रमबद्ध का निर्णय करने जाता है, वहाँ इसकी दृष्टि पर्याय से उठ जाती है। आहाहा! और निज कार्य में सन्मुख हो जाती है। इस क्रमबद्ध का फल अकर्तापना है। वह राग का भी कर्ता नहीं और पर्याय को करूँ, ऐसा विकल्प भी नहीं, और करूँ, ऐसा भाव भी नहीं। आहाहा!

निज आत्मकार्य में मूढ़ है। मोह के अभाव से यह ज्ञानज्योति शुद्धभाव को प्राप्त करती है... पहले मोह का भाव कहा-बतलाया, तो भी उसके अभाव से यह ज्ञानज्योति

शुद्धभाव को प्राप्त होती है। दूसरा कोई इसका कारण नहीं है कि यह राग मन्द करके क्रिया की, इतना किया, अमुक किया। बहुत पढ़ा, बहुत जाना, इसलिए इसके मोह का अभाव होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! स्वभाव में सन्मुख होने पर मोह के अभाव से यह ज्ञानज्योति भगवान अपने शुद्धभाव को प्राप्त करती है। आहाहा! शुद्धभाव-ध्रुवभाव को वह प्राप्त करती है। प्राप्त करती है, वह पर्याय में ज्ञात होता है परन्तु ज्ञात होता है ध्रुव। सनातन सत्य, कर्म से दूर, पूर्ण स्वभाव से विस्तृत, ऐसा सत्त्व, ऐसा जो सत्, वह उसे जानने में आता है, उसे प्राप्त होता है।

कि जिस शुद्धभाव ने... आहाहा! **दिशामण्डल को धवलित (-उज्ज्वल) किया है...** अर्थात् शुद्धभाव में उज्ज्वलता ऐसी आयी है कि तीन काल-तीन लोक को जो जानता है। दिशामण्डल अर्थात् सब जगत—तीन काल-तीन लोक, उसको उज्ज्वल किया। उज्ज्वल किया अर्थात् जानने में आया। आहाहा! आत्मकार्य जानने में आया और ऐसा सब जानने में आ गया। निर्मलानन्द की पर्याय में सब जानने में आया है। एक समय की पर्याय त्रिलोक के नाथ को जाने, वह पर्याय लोकालोक को जाने, उस पर्याय का ऐसा द्विरूप सामर्थ्य जो है... आहाहा! वह धवलित अर्थात् उज्ज्वल किया है, प्रगट हुआ है। आहाहा! अर्थात् कि अकेले आत्मा को प्राप्त होती है, ऐसा नहीं, परन्तु उसकी पर्याय में जैसा आत्मा है, वैसा ज्ञात हुआ। वैसा ही लोकालोक है, वह अन्दर ज्ञान की पर्याय में, उसकी -पर की अस्ति के कारण से नहीं परन्तु इसके अपने स्वभाव के स्व-परप्रकाशक के सामर्थ्य से दिशा को उज्ज्वल कर दिया है अर्थात् सब को जान लिया है। आहाहा! ऐसी भाषा है।

दिशामण्डल को धवलित (-उज्ज्वल) किया है... अर्थात् छहों दिशाओं को जान लिया। लोकालोक ज्ञात हो गया। आहाहा! जिसके प्रकाश में जीव का प्रकाश हुआ, वहाँ सब ज्ञात हो गया। स्व ज्ञात हुआ, वहाँ पर जानने का सामर्थ्य भी उसमें साथ आ गया, ऐसा कहते हैं। जहाँ स्व जानने में आया, उसका स्वभाव ही ऐसा स्व-परप्रकाशक है, इसलिए वह सब लोकालोक के दिशामण्डल को धवल कर दिया, उज्ज्वल कर दिया। स्वयं उज्ज्वल हुआ, इसलिए लोकालोक को जानने में उज्ज्वल हुआ। आहाहा! **तथा सहज अवस्था प्रगट की है।** स्वाभाविक अवस्था-दशा निर्मल, उसे जिसने प्रगट किया है। ऐसा यह आत्मा, वह मोक्ष का मूल प्रगट करके मुक्ति को प्राप्त होता है। आहाहा! बीच में देवलोक, गति अमुक और अमुक कुछ नहीं मिलता।

धीरज का भण्डार, धीरज से काम लेनेवाला, अपनी ओर के स्वभाव के सन्मुख होनेवाला, उसके प्रकाश में स्व और परप्रकाश पूर्ण प्रकाशित होता है। आहाहा! ऐसी सहज अवस्था को प्राप्त किया है। सहज अवस्था है। स्व को जहाँ प्राप्त किया, वहाँ लोकालोक जानने में आया, वह तो सहज स्वभाव स्वयं का है। यह सहज अवस्था हुई है, उसमें ज्ञात हो गया है। आहाहा! लोकालोक का जानना है, ऐसा नहीं। वह अवस्था का स्वभाव ही ऐसा है कि स्व को जहाँ जानने में आया, वहाँ पर का जानने का सहज स्वभाव में प्रगट हो गया है। स्वयं के कारण से वह प्रगट हो गया है, ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा! मुनि पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि के ये कलश हैं। ये अमृत से भरपूर कलश हैं। आहाहा! एक-एक पद में बहुत ही भरा है। बहुत ही गम्भीरता है। गहरा-गहरा रहस्य है।

तेरा चैतन्यतत्त्व जो प्रभु है, पूर्णानन्द का नाथ, उसे मोह का अभाव करके जाना, उसमें सब ज्ञात हो गया, कहते हैं। **शुद्धभाव ने दिशामण्डल को धवलित (-उज्ज्वल) किया है...** अर्थात् चारों ओर की दिशा का ज्ञान अपने में अपने कारण से हो गया है। आहाहा! ऐसा ही उसका स्वभाव है। यह ११० (गाथा पूरी) हुई। गाथा १११। यह अध्यात्म भाषा है न, सब अध्यात्म टीका है। एकदम परम सत्। जिसकी-पूर्ण सत् की अस्ति है, उसका जहाँ स्वीकार हुआ, वहाँ आगे सब लोकालोक सहज ज्ञात हो गया है। उसे जानने (के लिये) उपयोग लगाना नहीं पड़ता, कहते हैं। वह तो यह ज्ञात हुआ, वहाँ वह तो ज्ञात हो गया है। आहाहा! ऐसा चैतन्य का स्व-परप्रकाशक स्वभाव, सहज स्वभाव स्वयं से स्वयं में हुआ है। आहाहा!

अब इसमें वे एकेन्द्रिया, दोइन्द्रिया, त्रीन्द्रिया करके सामायिक करके बैठे। यह हमारी सामायिक है और यह अष्टमी का प्रौषध करके बैठे। यह कहे, यह हमारा प्रौषध है। भाई! सामायिक और प्रौषध किसे कहना? समता अर्थात् आनन्द का लाभ हो और पोषण अर्थात् जैसे चना पुष्ट होता है, पानी में जैसे पुष्ट होता है परन्तु वह तो पोला पुष्ट होता है। चना पानी में पुष्ट होता है परन्तु पोला-पोला पुष्ट होता है। आहाहा! यह तो भरपूर कस लेकर भगवान प्रगट होता है। पूर्ण कस लेकर पर्याय में... आहाहा! **सहज अवस्था प्रगट की है।** यह तो सहज दशा है। जैसा सनातन सहज स्वभाव है, वैसी ही सहज दशा हो जाती है, उसका नाम मुक्ति, उसका नाम मोक्ष है।

गाथा-१११

कम्मादो अप्पाणं भिण्णं भावेइ विमलगुणणिलयं।
मज्झत्थ-भावणाए वियडी-करणं ति विण्णेयं।।१११।।

कर्मणः आत्मानं भिन्नं भावयति विमलगुणनिलयम्।
मध्यस्थ-भावनाया-मविकृतिकरणमिति विज्ञेयम्।।१११।।

इह हि शुद्धोपयोगिनो जीवस्य परिणतिविशेषः प्रोक्तः। यः पापाटवीपावको द्रव्यभाव-नोकर्मभ्यः सकाशाद् भिन्नमात्मानं सहजगुण (निलयं मध्यस्थभावनायां भावयति तस्या-विकृतिकरण) अभिधानपरमालोचनायाः स्वरूपमस्त्येवेति।

निर्मलगुणाकर कर्म-विरहित अनुभवन जो आत्मा का।
माध्यस्थ भावों में करे, अविकृतिकरण उसे कहा॥१११॥

अन्वयार्थ : [मध्यस्थभावनायाम्] जो मध्यस्थभावना में [कर्मणः भिन्नम्] कर्म से भिन्न [आत्मानं] आत्मा को—[विमलगुणनिलयं] कि जो विमल गुणों का निवास है उसे—[भावयति] भाता है, [अविकृतिकरणम् इति विज्ञेयम्] उस जीव को अविकृतिकरण जानना।

टीका : यहाँ शुद्धोपयोगी जीव की परिणतिविशेष का (मुख्य परिणति का) कथन है।

पापरूपी अटवी को जलाने के लिए अग्नि समान ऐसा जो जीव द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म से भिन्न आत्मा को—कि जो सहज गुणों का निधान है उसे—माध्यस्थ भावना में भाता है, उसे अविकृतिकरण नामक परम-आलोचना का स्वरूप वर्तता ही है।

गाथा - १११ पर प्रवचन

गाथा १११।

कम्मादो अप्पाणं भिण्णं भावेइ विमलगुणणिलयं।
मज्झत्थ-भावणाए वियडी-करणं ति विण्णेयं।।१११।।

निर्मलगुणाकर कर्म-विरहित अनुभवन जो आत्मा का।
माध्यस्थ भावों में करे, अविकृतिकरण उसे कहा॥१११॥

टीका - आहाहा! **यहाँ शुद्धोपयोगी जीव की परिणतिविशेष का (मुख्य परिणति का) कथन है।** आहाहा! शुद्धोपयोग, साम्यभाव, अविकृतभाव, वीतरागभाव सब एकार्थ है। शुद्धोपयोग। दया, दान का उपयोग, वह अशुद्धोपयोग है। दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा... यह तो (मोक्षपाहुड़) ८३ गाथा में कहा है न? वह कहीं जैनधर्म नहीं है। व्रत, पूजा, भक्ति आदि वह कहीं जैनधर्म नहीं है। अष्टपाहुड़ में मोक्षपाहुड़ है। आहाहा! ८३ गाथा। पूजा, व्रत, नियम, तप, भक्ति, वैयावृत्त्य वह कोई जैनधर्म नहीं है। आहाहा! वह तो पुण्यभाव है, वह तो रागभाव है; वह कहीं जैनधर्म नहीं है। जैनधर्म तो वीतरागभाव है। आहाहा! जो व्यवहार से पुण्य है, उसे धर्म मानता है, उसे कहते हैं कि वह तो जैनधर्म ही नहीं है। अन्यधर्म को तूने जैनधर्म माना है, तू अन्यधर्मी है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय को भी धर्म माननेवाला जैनधर्मी नहीं, अन्यधर्मी है। आहाहा!

शुद्धोपयोगी जीव की परिणति... भाषा देखो! **शुद्धोपयोगी जीव की परिणतिविशेष का (मुख्य परिणति का) कथन है।** आहाहा! शुभ और अशुभभाव, वह जैनधर्म नहीं है। इसीलिए साम्यभाव भी नहीं है, इसलिए शुद्धोपयोग भी नहीं है। शुद्धोपयोग और साम्यभाव, वह जीव का वीतरागी परिणाम है, वह जैनधर्म है। देखा? **शुद्धोपयोगी जीव की परिणतिविशेष का (मुख्य परिणति का) कथन है। पापरूपी अटवी को जलाने के लिए...** पाप अर्थात् कि पुण्य और पाप दोनों। **पापरूपी अटवी...** आहाहा! पर्याय में पापरूपी अटवी—विशाल पृथ्वी। आहाहा! उसे **जलाने के लिए अग्नि समान ऐसा जो जीव द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म से भिन्न...** आहाहा! जो जड़कर्म से भिन्न, पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति के भाव से भी भिन्न और नोकर्म अर्थात् शरीर, वाणी

और मन से भी भिन्न, ऐसे आत्मा को। आहाहा! **कि जो सहज गुणों का निधान है...** वह आत्मा कैसा है? स्वाभाविक गुणों का निधान - भण्डार है। आहाहा! गुणों का गोदाम है, अकेले पवित्र गुण का गोदाम है, निधान है। आहाहा! उस निधान की नजरें नहीं की। नजरें सब पर्याय और राग पर होने से निधान नजर में नहीं आया। पर्याय और प्रशस्त भले राग हो, उसकी रुचि और दृष्टि के कारण वह रागरहित निधान नजर में नहीं आया।

ऐसा जो जीव **पापरूपी अटवी को जलाने के लिए अग्नि समान...** आहाहा! पाप में पुण्य और पाप दोनों आ गये, हों! आहाहा! पाप अर्थात् अकेला अशुभभाव नहीं। पुण्यभाव भी पाप है। योगीन्द्रदेव के दोहा में आता है 'पाप को पाप तो सब कहे, पुण्य को अनुभवीजन पाप कहे' (योगसार, दोहा ७१) योगीन्द्रदेव में आता है। आहाहा! कठिन काम है। यह तो धीरज का-धीर का काम है। 'धीरज धर न अरे अधीरा...' आहाहा! अन्दर धीरज का भण्डार भगवान है, वहाँ तुझे जाना है। धीरज कर... धीरज कर। उतावल—यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ... इसका करना और यह करूँ... यह सब छोड़ दे। यह वस्तु के स्वरूप में नहीं है। आहाहा!

यह तो पुण्य और **पापरूपी अटवी को जलाने के लिए अग्नि समान ऐसा जो जीव...** ऐसा जीव। आहाहा! **द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म से भिन्न...** जड़कर्म, भाव अर्थात् पुण्य-पाप के भावरूपी कर्म और मन, वचन, कायादि नोकर्म, इनसे **भिन्न आत्मा को...** आहाहा! नियमसार का एक-एक श्लोक भी गजब का है! शीतलप्रसाद ने इसका अर्थ करते हुए लिखा है, समयसार से भी कितनी ही नवीन बातें इसमें नियमसार में ऊँची है। कारणपरमात्मा की प्रसिद्धि की व्याख्या अलौकिक है। प्रत्येक गाथा कारणपरमात्मा सनातन सत्य प्रभु... आहाहा! उसकी प्रसिद्धि करने को समर्थ है।

कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैंने तो मेरी भावना के लिये बनाया है, बस। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य जैसे भगवान के पास गये थे। वे कहते हैं कि मैंने तो मेरी भावना के लिये बनाया है। आहाहा! मेरा नाथ आत्मा शुद्ध पूर्ण सनातन सत्य की भावना में घोलन में यह बनाया है। आहाहा! भले विकल्प था परन्तु घोलन स्वभाव की ओर था। यहाँ कहा न? शुद्धोपयोगी जीव की परिणति विशेष। कहना है वह उन्हें विकल्प है। बोलने के काल में, लिखने के काल में विकल्प है परन्तु उसकी गौणता गिनकर... आहाहा! शुद्धोपयोग की

प्रधानता गिनकर, उसका यह परिणमन का कथन किया है। वह जीव कैसा है?

पापरूपी अटवी को जलाने के लिए अग्नि समान... यह द्रव्यकर्म, भावकर्म अर्थात् पुण्य और पाप दोनों, पापरूपी अटवी थी न पहला शब्द? इसलिए उसका स्पष्टीकरण यहाँ कर दिया। भावकर्म। भावकर्म में पुण्य और पाप दोनों आ गये। आहाहा! दोनों पाप हैं। समयसार की टीका के अन्तिम अधिकार में अमृतचन्द्राचार्य (जयसेनाचार्य) ने स्पष्टीकरण किया है। भाई! यह अधिकार तो पाप का चलता है, उसमें तुमने यह पुण्य का अधिकार क्या लिया? यह पुण्य, वह पाप है, इसलिए अधिकार लिया। तू सुन। समयसार की टीका पुण्य-पाप (अधिकार का) अन्तिम श्लोक। पवित्रता का पिण्ड प्रभु, वहाँ से पुण्य पतित करता है। आहाहा! पवित्रता का पिण्ड प्रभु, उसमें पुण्य परिणाम (हो), वह उससे (स्वरूप से) पतित करता है। आहाहा! अब उसे कहना कि पुण्यभाव से धर्म होता है, शुभभाव करते-करते आगे बढ़ा जाता है... आहाहा! यहाँ तो कहा कि यह पुण्यभाव... अधिकार पाप का चलता है, उसमें यह भले कहा कि व्यवहार से पवित्र है। संस्कृत टीका में ऐसा लिया है। परन्तु निश्चय से तो पवित्रता से पतित करता है। पवित्रता का पिण्ड प्रभु से पतित पुण्यभाव करता है, इसलिए वह भी पाप है। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं **द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म से भिन्न आत्मा को—कि जो सहज गुणों का निधान है उसे—...** जो ध्याता है। आहाहा! जैसे बालक उसकी माता के दूध को धाता है, पीता है। इसी प्रकार जो आत्मा को ध्याता है। आहाहा! **उसे अविकृतिकरण नामक परम-आलोचना का स्वरूप वर्तता ही है।** क्या कहा? जो ऐसे सहज गुणों का निधान, ऐसे भगवान आत्मा को जो ध्याता है अर्थात् ध्यान में ध्येय बनाकर ध्याता है, चूसता है। आहाहा! आनन्द का रस चूसता है, उसे सहज गुण नामक परम आलोचना, स्वभाविक गुण नामक परम-आलोचना का स्वरूप वर्तता है। आहाहा! उसे स्वभाविक गुण नामक परम आलोचना। यह विकल्प नहीं। आहाहा! यह निर्मल पर्याय, शुद्धोपयोग, उसे यहाँ सद्गुण नामक परम-आलोचना का स्वरूप वर्तता है, ऐसा कहा। शुद्धोपयोग को (कहा है) शुभ को नहीं। **परम-आलोचना का स्वरूप वर्तता ही है।** इत्यादि टीका करेंगे.... (*श्रोता :* प्रमाण वचन गुरुदेव!)